अपने जैनमुनिओसे प्रार्थना

अपने अपने गुरुओं और बड़े बूढ़ोंके नामसे पुजाती आनेवाली प्रचलित ३२ सम्प्रदायोंसे जैन समाजको आजतक भारीसे भारी नुकसान उठाना पड़ा है। शायद पहले इससे कुछ लाभ पहुंचा हो? मगर इस अनावश्यक वाडाबंदी, सम्प्रदायवादकी इस नव युगमें आवश्यकता नहीं है, इन सब सम्प्रदायोंको मिटाकर मात्र एक ज्ञातृपुत्र महावीर भगवानके नामपर अपनी सम्प्रदायका नाम रखकर ४८३ साधुओंको सच्चा अनेकान्तवादी बन जाना चाहिये जिससे जैन समाजकी बिखरी हुई शक्तिका पुनः संग्रह हो सके। अपने पुराने बड़े बूढ़ोंके नामका मोह हमें अब नाम मात्रको भी न होना चाहिये। हमें भगवान महावीरकी वास्तविक देन है और वह सम्प्रदायको मिटाकर एकता और संगठन तथा प्राणी मात्रमें प्रेम करनेसे ही पूरी की जा सकती है।

प्रार्थी—

ज्ञातृपुत्र महावीर जैन सघीय—

पुष्फ भिक्खु

॥ ॐ ॥

नमोत्थुणं समणस्स भगवओ णायपुत्त महावीरस्स ।

महावीर निर्वाण और दिवाली



MAHAVIR IS MINE

Fade fade each earthly joy, Mahavir is mine,
Break, ev'ry tender tie, Mahavir is mine,
Dark is the wilderness,
Earth has no resting place,
Mahavir alone can bless, Mahavir is mine

Tempt not my soul away, Mahavir is mine,
Here would I ever stay, Mahavir is mine,
Perishing things of clay,
Born but for on brief day,
Pass from my heart away, Mahavir is mine

Farewell ye dreams of night, Mahavir is mine,
Lost in this dawning light, Mahavir is mine,
All that my soul has tried,
Left but a dismal void,
Mahavir has satisfied, Mahavir is mine

Farewell, mortality, Mahavir is mine,
Welcome eternity Mahavir is mine,
Welcome, O loved and blest,
Welcome sweet scenes of rest,
Welcome my Saviour's breast Mahavir is mine

प्यारे वीरपुत्रो! यह जो दीपाली पर्व है इसका ज्ञातृ पुत्र महावीर प्रभुके निर्वाणके साथ क्या सम्बन्ध है? इसे निवेदित करनेके लिये और ज्ञातनन्दन वीर प्रभुके उत्तम जीवनसे हम सबको क्या बोध ग्रहण करना चाहिये? इसे विचारनेकी आज हमारी प्रबल इच्छा है।

दीपमालाका प्रसंग प्रति वर्ष आता है और चला जाता है तथापि यह प्रसंग हमे क्या सूचित करता है, इसका विचार करनेवाले नरपुंगव आज कहां हैं?

आज तो—अच्छे अच्छे भोजन करना, फेशनवाले और सुन्दर सुशोभित वस्त्रोंको पहनना, अथवा अनेक प्रकारके भोग विलासकी सामग्रियोंमें लुब्ध रहना, अनेक तरहके खेल रचना, कहीं एकान्तमें जाकर मित्रोंकी गोष्ठीमें जुआ खेलना, बस इन सबमें दीवाली पर्वका माहात्म्य आकर समा जाता है।

यदि इतनेमें ही कोई दीवाली मानता है तो वस मनुष्यकी बड़ी भूल हो जाती है। ऐसी भारी भूल न होने पावे इसलिये दीपमाला पर्वकी उत्पत्ति किस प्रकार हुई, इसके सम्बन्धमें जैनोंकी क्या मान्यता है यही हम विचारेंगे।

हमारे चरम तीर्थंकर श्री वीर प्रभुका जन्म ईस्वी सन पूर्व ५९९ मे हुआ था।

जब वे प्रभु माताकी उदर कन्दरामें आये थे तब उस समयसे ही उन्होंने यह निश्चय किया था कि "जहांतक मेरे माता पिता जीवित रहेंगे वहां तक मैं दीक्षा न लूंगा।"

यद्यपि दीक्षा लेना सबके हितकी साधना है, सब शास्त्रकारोंने भी यही माना है, परन्तु यदि वही दीक्षा माता-पिताके हृदयमें उद्वेग पहुंचा सकती है तब उसका स्वीकार करना उनके सामने किस प्रकार न्याय सगत समझा जाय ?

इन उत्तम विचारोको लेकर अन्य पुरुषोको माता-पिताकी भक्ति करनेका उत्तम नमूना दिखानेकी इच्छासे वे स्वयं घरमें परत्यागीकी दशामें भी २८ वर्ष तक रहे।

तथा अपने भाईके आग्रहसे भी दो वर्ष घरमे ही अधिकतर गृहस्थ धर्मका पालन करते रहे थे।

तदनन्तर उन्होंने इस घटनासे ससार वासियोंको भाईकी सेवा करनेकी तथा उसे सुखी बनानेकी भी पूर्ण शिक्षा दी।

तीसरे वर्षमें आपने दीक्षा स्वीकार की और १२ वर्षतक अनेक बाह्य तथा अभ्यन्तर तप तपते रहे।

नाना भांतिके काम, क्रोध, मान, माया, लोभ, राग, द्वेष, इन्द्रिय विषय, न माननेवाले चचल मन, आदि अनेक मानसिक शत्रुओंका सहार किया, सांसारिक पदार्थोकी असारता एव असत्यताका खूब अनुभव किया।

ध्यान मग्न रहकर आपकी आत्माने—निजमे परमात्माका अनुभव किया, इधर-उधरकी भटकनाओंसे हटाकर संसारको भी अपनेमें सब सुख पानेका पूर्ण संकेत करा दिया।

सब भावोंको साक्षात् बनानेवाले केवलज्ञानको प्राप्त करनेके अनन्तर आपने उस अनन्त ज्ञानमेंसे श्रुतज्ञानकी गंगाका लाभ औरोंको देनेके लिये गांव गावमें स्वयं विचरे।

और जहां तहां दया और सत्यका उपदेश देकर अनेक पुरुषोंको हिंसक मार्ग और पाप चरित्रसे बचाया, तथा उनको जैन धर्मानुयायी बनाया।

इस प्रकार तीस वर्षतक परोपकारके निमित्त ही आपने अपने जीवनका व्यय किया। अधिक क्या कहें सब प्रकारसे उनका निस्वार्थ जीवन था।

७२ वर्ष बाद अर्थात् ई० सनसे ५२७ वर्ष पहले अपापा नगरमें आप पधारे, निर्वाणका समय समीप आ गया है यह केवलज्ञान द्वारा जान लिया, अतः वीर प्रभुने अन्तिम समयका बोध भी जनताको दिया और शुक्लध्यानकी श्रेणीको पारकर भगवान ज्ञातपुत्र महावीर प्रभुने निर्वाण प्राप्त किया।

य समाचार आस पासके राजाओंको विदित हो जानेके कारण प्रभुकी वन्दना करनेके लिये उस समय १८ देशोंके राजा भी आ पहुंचे थे।

ये सब ज्ञान आपके लिये कार्तिक बदी अमावस्याके दिन घट गई थीं, जिस घटनाको आज २४८४ वर्ष हो जाते हैं।

उस समय उन भिन्न भिन्न देशसे आये हुए राजाओंने यह निम्न विचार किया कि—

ओह! भगवान केवलज्ञानकी मूर्ति थे, उनके निर्वाणसे आज भारत जगत्‌में भावद्यान (दीपक) का नाश हो गया। अतः भावदीपकका हम किसी तरह पुनः स्मरण हो इसलिये दीपक जलानेकी प्रथा प्रचलित कर दी।

तबसे ही दीपमालिका (दीवाली) का पर्व्व संसारमें प्रचलित होनेकी मान्यता जैनोंमें है।

प्रिय बान्धवो! हमने श्रीमन्महावीर पितामहके जीवनको संक्षेपमें कहा है। परन्तु उनके जीवन चरित्रसे हमें क्या सीखना चाहिये, जहांतक हमारी समझमें यह न आ जायगा वहांतक उस जीवनका प्रभाव हमपर न पड सकेगा।

अतः उनके चरित्रमेंसे लेने योग्य शिक्षाएँ और आजकलके जैनोंके द्वारा करणीय कर्तव्य इन प्रश्नोंपर हम यथार्थ विचार करेंगे।

समभाव

महावीर भगवानके जीवनका सूक्ष्म रीतिसे अवलोकन करनेपर और उसपर भी यदि बारीकीसे विचार करें तो उसके उत्तम गुण हमारी आखों आगे आ खडे होते हैं। जिनमें मुख्य गुण उनका समभाव— समान दृष्टि है।

उनकी समान दृष्टिके अनेक उदाहरण दिये जा सकते हैं, परन्तु यहां हम उनका एक ही दृढ और पुष्ट दृष्टान्त देंगे।

डंक मारनेकी बुद्धिसे पैरको छूनेवाले चण्डकौशिक नागकी, एवं

नमन करनेकी बुद्धिसे मस्तकको पैरसे स्पर्श करनेवाले इन्द्रकी ओर भी जिनकी समान बुद्धि है, ऐसे वीरकी समभावदृष्टि निस्सन्देह प्रशंसनीय एवं अनुकरणीय है। केवल उनका जीवन अनुकरणीय ही है इतना ही नहीं बल्कि उन्होंने इस प्रकारका उपदेश भी दिया है। यह बोध किसी आचार्यने 'सम्बोध सत्तरी' में प्रकट भी किया है। यथा—

सेयवरो वा आसवरो वा बुद्धो अन्नो अहवा को वा।
समभाव भाविअप्पा, लहइ मुक्खो न संदेहो ॥१॥

भावार्थ—चाहे कोई मनुष्य दिगम्बर हो, श्वेताम्बर हो, बौद्ध हो अथवा अन्य किसी धर्मका भी चाहे अनुगामी क्यों न हो, परन्तु यदि उसकी आत्मामें समभाव बस गया है तब तो वह अवश्य मुक्ति पालेगा हमें जिसपर निस्संदेहतया दृढ़ विश्वास है।

इसी ढंगसे उपदेश तरंगिणीमें भी एक आचार्य लिखता है कि—श्वेताम्बरमें, दिगम्बरमें, पक्षवाद और तर्कवादमें मोक्ष नहीं है और कषायोंसे मुक्त होना ही सच्ची मुक्ति है।

"और कषायोंसे मुक्त होनेका कार्य प्रत्येक आत्मा कर सकता है।"

इस प्रकार जैनाचार्योंने भगवान वर्धमान प्रभुके पीछे चलकर समानदृष्टि रखनेका बोध दिया है।

करुणा

दूसरा गुण वीर प्रभुका करुणा है, जो सबसे महान् है। जिसकी

इस जगतमें तुलना नहीं की जा सकती, यह करुणा नामक गुण सबमें बड़ा है।

जगतमें जितने भी महान पुरुष हो गये हैं व सब करुणाके गुणसे ही प्रसिद्धि प्राप्त हैं। सब गुणोंका आधारभूत करुणाका गुण भगवानमें कितने अंशमें प्रगट हो गया था, इसका ठीक विचार तो इन शब्दोंमें किस प्रकार किया जा सकता है? तथापि थोड़ेसेमें एक छोटासा दृष्टान्त देकर बतानेका यथाशक्य प्रयत्न करूंगा।

एक समय पढाल नामक ग्रामके पास वनमें श्रीमहावीर प्रभु कायोत्सर्ग करके ध्यानमें मग्न हो रहे थे। आपके ध्यानकी स्थिरता और मनकी दृढताका अनुभव अवधिज्ञान द्वारा देखकर इन्द्रने एक दिन अपनी सभामें आपकी प्रशंसा की। तथा वहींसे उसने आपको नमस्कार भी किया। और एकदम बोल उठा कि—

अहा! महावीर प्रभुका अनुपम धैर्य है? उनके मनकी स्थिरता कितनी असाधारण है? उनकी विचारश्रेणी कितनी उच्च है? आपके रोम-रोममें करुणाका कितना शान्त स्रोत बह रहा है? धन्य है इस प्रभुको? जिनको [illegible] कोई देव या मनुष्य नहीं है जो अपना सारा बल लगाकर इस प्रभुको [illegible] भी कर सके?

ये प्रशंसाके शब्द 'संगम' नामक [illegible] अतिशयोक्तिपूर्ण भासमान होनेके कारण उस [illegible] [illegible] [illegible] लिये वहांसे चल निकला। जगत्में [illegible] [illegible] [illegible] हो सकते हैं जिससे सन्ताप, परिताप [illegible] [illegible] [illegible] हो [illegible] [illegible] साधनोंसे उसने प्रभुको [illegible] [illegible] [illegible] भी कसर न रक्खी

कट्टरसे कट्टर शत्रु भी वैसा काम न कर सके ऐसे निर्दय और त्रास देनेवाले उपद्रवरूप हाथ उन्होंपर किये। परन्तु जब उसे इतने पर भी सफलता न मिली और प्रभुके मनकी निश्चल वृत्तिको जरासा भी भंग न देखकर उसने प्रभुको किसी प्रकार मोह उत्पन्न करनेके लिये शृङ्गार आदि प्रयोगोंकी उनपर आजमाइश की। मगर जलके ऊपर अधिक ताप प्रहारकी तरह उनकी सब चेष्टायें वृथा गईं।

इस तरह एक दो दिन नहीं बल्कि छ मास पर्यन्त श्रीवीरप्रभुको उसने अनेक प्रकारके उपसर्ग देकर सताया परन्तु प्रभु तो प्रभु ही रहे। वे अपने प्रभावसे जरा भी न डिगे। अन्तमें वह अधमदेव प्रभुके सामने हार मानकर चला गया।

बन्धुओ! उस समय प्रभुके मनमें कितने उत्तम विचार उत्पन्न हो गये थे। उन विचारोंका कभी आपको ख्याल भी आता है? प्रभुकी उस समयकी विचार श्रेणीका रहस्य समझनेके लिये कभी आपने प्रयत्न भी किया है? यदि इससे आप अनजान हो तो मेरे साथ आप विचार प्रदेशमें चलिये और मैं आपको उस समयके प्रभुका हृदय सम्बन्धी सम्पूर्ण चित्र तुम्हारे मनकी आंखके सम्मुख खैंचकर पेश कर दूं।

क्रिश्चियन धर्म संस्थापक जिसिसक्राइस्टका महत्व और उसका उपदेश न समझनेवाले उस समयके यहूदी जब उस महापुरुषको वधस्तम्भके पास ले गये उस समय उस दयालु महात्माने उनपर जरासा भी क्रोध न करके, अथवा यहूदी लोगोंपर तिरस्कारकी दृष्टिसे उन्हें

बिल्कुल भी न दुखा बल्कि उनपर दया लाकर ये उद्गार निकाले थे कि—"Oh Father Forgive them they do not know what they do" "हे दयालु पिता ! इन यहूदी लोकोंको तू क्षमा कर !" वे इसके लिये क्या करते हैं इसकी उसे विचारको खबर भी नहीं।" इन शब्दोंके कहे जानेके पहले पांच सौ वर्ष पूर्व चरणमूर्ति श्री वीरपरमात्माने संगमदेवके सम्बन्धमें जो उद्गार निकाले थे व प्रत्येक मनुष्यको अपने हृदयमें लिखकर रखना चाहिये उन्होंने उस समय विचारा था कि—

"अहो निष्कारण ही अन्य जीवोंको दुःख देनेवाले इस विचारे पामर जीवकी क्या गति होगी ?'

खेदका बात है कि—मेरे जैसे जीव जिनको कि औरोंके आत्माका कल्याण करना है ? और जीवोंको दुःखोंसे मुक्त करना है, व भी इस जीवको क्रूर आचरणसे इसका हित नहीं कर सकते। मेरे मनमें रह-रहकर यही भाव आता है कि—मेरे हाथसे इसका कुछ भी तो भला होना चाहिये, परन्तु यह भला होनेके बदले उसने घातकी विचार और मुझे दुःख देनेवाले कार्यसे यह उलटा कर्मसे नष्ट गया है जिसका मुझे परम खेद होता है कि इस विचार पामर जीवका यथा समयमें कुछ भी हित न कर सका।" ऐसे विचार उनके हृदयमें स्फुरणा दे रहे थे कि—उनकी आंखोंसे अश्रुप्रवाह बह निकला। इसी कारणसे योगशास्त्रमें श्रीवीरप्रभुकी स्तुतिके सम्बन्धमें यह लिखा गया है कि—

"कृतापराधेऽपि जने, कृपामन्थरतारयो ।
ईषद्बाष्पार्द्रयोर्भद्रं श्रीवीरजिननेत्रयो ॥१॥

अपराध करनेवाले प्राणि समूहपर न्याममें नम्र और आमुओंसे भींग हुए वीर भगवानके नेत्र सबक लिये कल्याणकारक हों।

सत्यशोधक वृत्ति

श्री ज्ञातपुत्र महावीर प्रभुके बोधसे यह स्पष्ट फलित है कि—लोकोंमें सत्यशोधकवृत्ति जिससे प्रगट होती है ऐसे इनकी विचार-श्रेणीका ही उन्होंने बोध दिया है। लोक अमुक सत्यको मान ले इससे अपेक्षा उनमें सत्यशोधक वृत्ति जाग्रत हो यह उनके लिये विशेष हितकर है। इसी दृष्टिकोणसे ही स्याद्वाद मतका स्थापन किया गया है।

स्याद्वादका दूसरा नाम अनेकान्तवाद है। यदि संक्षेपमें कहा जाय तो एक ही वस्तुको अलग-अलग विशाल दृष्टिबिन्दुसे देखनकी रीति ही अनेकान्तवाद है।

एक ही विषयको अलग-अलग दृष्टि बिन्दुसे देखा जाय तो वस्तु कैसी सिद्ध होती है, इसको विचारना, और फिर उस वस्तुके स्वरूपको मानना, उस वस्तुके ज्ञानको पानकी और सत्यके समीपमें आनकी उत्तमसे उत्तम विचारक रीति यही है।

आजकल जिस प्रकार थियोसोफीकल अलग अलग धर्मोंको भिन्न भिन्न दृष्टि बिन्दुसे अभ्यास करके सत्यको स्वीकार करते हैं, वही प्रयत्न (किसी विलक्षण और भिन्न स्वरूपमें) श्री महावीरके उपदेशममे प्रकट होकर निकलता है।

और इसी कारणसे श्रीमद् आनन्दघनजी जिनेश्वरके स्तवनमें बताते हैं कि—"षट्दर्शन जिन अंग भणीजे जी।'

इस प्रकारकी मध्यस्थ दृष्टिवाला कोई भी पथ, मत या सम्प्रदाय वालेके साथ विवाद या कलह नहीं कर सकता। बल्कि जितने अशमें सत्य जितना भी है उस उतने ही अशमें उसमेंसे स्वीकार कर लेता है।

इस स्याद्वाद मतकी उत्तमता दर्शानेका इस समय प्रसग नहीं है, तथापि इतना तो अवश्य ही जानना चाहिये कि—जिस पुरुषने स्याद्वाद मतका यथार्थ स्वरूप जान लिया हो, वह मनुष्य किसी अपवादके अमुक विषयमें सत्य है। और वह विचार करनेका प्रयत्न करता है। जिससे ऐसे पुरुषका हृदय विशाल और उदार होता है। और होना भी यही चाहिए, पर यदि न हो तो उसीका दोष है स्याद्वादका नहीं। यह मेरा मन्तव्य है।

सब अपवादोंसे सत्यका अवलोकन करना चाहिये। इस उत्तम मतके माननेका दावा करनेवाले लोक यदि अमुक अपवादको लेकर चिपट बैठे और बाकीके अपवादोंको असत्य ठहरानेके लिये निकल पड़े तो उस जैसा व्यक्ति इस सुन्दर मतको लज्जित करनेकी अपेक्षा और क्या कर सकता है? ऐसे पुरुषोंके हितकी कामनाके अर्थ ही, वीर प्रभुने उपदेश दिया है कि—

"सत्यशोधक बनो, सत्यके पीछे चलो, और अलग अलग दृष्टि बिन्दुस—(अपवादसे) हरएक वस्तुकी परीक्षा कर देखो।"

श्री वीर भगवानमे इतने अधिक गुण है कि—यह जीभ और लेखनी उनको बतानेमें असमर्थ है। किसी कविने कहा है कि—

असितगिरिसमं स्यात्कज्जलं सिन्धुपात्रं,
सुरतरुवर शाखा लेखनी पत्रमुर्वी।
लिखति यदि गृहीत्वा शारदा सर्वकालं,
तदपि तव गुणानां वीर ! पारं न याति ॥१॥

भावार्थ—समुद्ररूपी दवातमें, मेरु पर्वत जितनी स्याही डाली जाय, कल्पवृक्षकी शाखाओंकी कलम बनाई जाय, पृथ्वी कागजकी तरह काममें ली जाय, और शारदा सदैव लिखनेका काम किया करे तब भी हे वीर ! तेरे गुणका अन्त न आ सके। तब मेरे जैसे पामर और अज्ञान जीव थोड़ेसेमें क्या कुछ बयान कर सकते हैं ? तथापि संक्षेपमें बताऊंगा कि—सब गुण उनमें दैवीगुण थे।

वे वीर प्रभु मनुष्य थे उनमें सच्चा मनुष्यत्व था। परन्तु पूर्णता प्राप्त मनुष्य थे। वे जिन थे, उन्होंने अपने शरीरमें रहनेवाले तथा मनमें रहनेवाले तुच्छ और पाशवसम सब ही विकारोंपर विजय प्राप्त की थी। उनकी दृष्टिमें वे ईश्वर भी थे। उनमें किसी प्रकारकी त्रुटि और न्यूनता न थी। वे सर्वाङ्ग सम्पूर्ण थे। परन्तु लोक इसे विशेष भक्तिकारक समझेंगे।

इन सब गुणोंका वर्णन तो किया, परन्तु उन सब गुणोंसे परिचित होकर हमें क्या करना चाहिये, क्योंकि ज्ञानके अनुसार बर्ताव न हो तो ज्ञानसे लाभ क्या ? इनके चरित्रसे हम जैनोंको तथा सकल मानव बन्धुओंको क्या क्या सार लेना चाहिये इसपर जरासा विचार करेंगे।

वीर प्रभुने आत्म-स्वरूपका अनुभव किया और परमात्मपद प्राप्त

किया, और कार्तिकी अमावस्याको इस नश्वर देहका त्याग किया। उन्होंने जिस अमूल्य ज्ञानका उपदेश दिया है, और अपने परोपकारी और निःस्वार्थी जीवनमें उत्तम गुणोंका नमूना जगतको प्रकट कर दिखाया है उस ज्ञान और गुणसे हमारे करने योग्य क्या २ कार्य हैं प्रथम यह अवश्य विचारणीय है।

हमारे जैन श्रावक श्रमणोपासक आज प्राय व्यापारी हैं,व्यापारी नित्य प्रति सवेरे और सांझ लेनदेन करते हैं, और उसका नफा नुकसान शोधकर जोड देते हैं, और दीवालीके दिन सारे वर्षभरका आय व्यय जोडकर नवीन वर्षमें प्रवेश करते हैं। इसी तरह महावीर भगवानने भी इस संसाररूपी व्यापारकी दुकानमें वर्षके अन्तमें 'आत्म निरीक्षण' करते हुए बताया है कि– ज्ञान, दर्शन और चारित्ररूपी तीन रत्नोंका तुम्हें लाभ मिला है।

जिस वस्तुके प्राप्त करनेकी पूर्ण आवश्यकता थी वह अब मिल गई है। साध्य वस्तुकी साधना भी कर ली गई और अब हम उस महान् गुरुके अनुयायी भी कहलाने लगे हैं। और 'वीर पुत्र' जैसा मान्य इल्काब भी लेना चाहते हैं। तब फिर उस महान प्रभुके पद चिन्हक पीछे चलकर अंतिम १२ मासके आत्मपथमें कितना प्रवास कियाहै, वह वर्षके अन्तमें अवश्य विचारणीय है।

बन्धुओ! पहले बताया जा चुका है कि—जैन जाति व्यापार करनेका कार्य करनेसे प्रसिद्ध है। यदि उसे एक पाईका हिसाब न मिलता हो तो आधी राततक दिया जलाकर बैठ रहते हैं, और हिसाब ठीक मिलनेपर ही संतोष प्राप्त करते हैं। लाभ और हानिका

पूर्ण विचार करके लाभकी तरफ जानेवाली वणिक् बुद्धिके लिए यह अभिमान और गौरवकी बात है। तब फिर हमें वर्षके अन्तिम दीपमालाके पवित्र दिनोंमें इस प्रकार विचार करते करते आत्म-निरीक्षण करना भी अत्यावश्यक है।

हमने अपनेमें किन-किन गुणोंकी वृद्धि की है? परोपकार, दया, सहनशीलता, जितेन्द्रियत्व, समभाव आदि बड़े बड़े गुण जो कि महावीर भगवानमें सहज थे, उन गुणोंमेंसे कितने गुण इस वर्षमें प्राप्त किये? उन्हें पानेके लिये क्या क्या प्रयत्न किये? अथवा अपने किन किन दोषोंको दूर किया? और किन दोषोंको दूर करनेके प्रयत्नमें हैं? प्रयास करते समय क्या-क्या बाधाएँ उत्पन्न हुई? और क्या हुई? और उन बाधाओंके सामने हमने कितनी वीरता प्रदर्शित की? और कितने अंशमें कायरताका सेवन किया? अन्य मानवोंसे कितना सहयोग किया? उनमें कितनी सहानुभूति प्रकट की? अपने धर्मका क्षेत्र कितना विशाल किया? इतर समाजको कितने प्रमाणमें सम्मिलित किया? उनसे कितना पुष्कल व्यवहार साधन किया? सादा जीवन कितने प्रमाणमें बनाया? हमने देशको स्वतन्त्र बनानेमें कितना त्याग किया? मानव समाजके कितने छिने हुए अधिकार उनको वापस दिलाए?

इस प्रकार सूक्ष्म दृष्टिसे प्रत्येक मनुष्यको विचार करना चाहिये, और जिस व्यापारमें लाभ न हो, अथवा हानि होती हो ऐसा व्यापार कौन दीर्घ दृष्टिवाला सज्जन पुनः पुनः किया करेगा?

आलोचना

अर्थात्

सांवत्सरिक क्षमा प्रार्थना

वीर प्रभु ना वचनो तणा, अवला कीधा मे अर्थ ।
युक्ति करी मन वालियु, पण कीधी व्यर्थ ॥
त मुक्त मिच्छामि दुक्कड ॥१॥

साधुए शिक्षा दीधी घणी, त्रणसे साठे दिन ।
पण हु वज्र पत्थर बन्यो, थयो काइ नर भिन्न ॥२॥

नाम फक्त श्रावक रह्यो, कामो सानज धूंस ।
दीकरीनो लीधो दोम्डो, तण परण्यो थइ खुश ॥३॥

गाय गवेटी थी गयो, तिर्य्यंच थी पण वेद ।
एकेन्द्रिय सम थइ रह्यो, आशु जैन विवेक ॥४॥

आनी अपासरे मानमा, कीधी ठेलाठेल ।
समना उडाडी सर्वनी, उलटो कीधो मेल ॥५॥

जैन थयो पण वश पड्यो, पाच इन्द्रियन हाथ ।
तजवानु त मैं आदर्यु, आमे नाखी नाथ ॥६॥

धर्म नो मर्म जाण्या विना, निन्दा किधी अपार ।
परधर्मनी टाप टीपमा, मोह्यो वार हजार ॥७॥

श्रद्धा विना तप व्रत कर्या, लाडु लेवा इनाम ।
जश मोटाइ मा मरी रह्यो, सोयु मोक्ष इनाम ॥८॥

मार ममत रजिया वध्या, घर संपनी मांय।
नजीवी धातन कारणे, मद पाडूया ज्यां त्यांय ॥९॥
श्रावकनो भव भागवु, कोइ पूर्वना पुण्य।
पणम फर्ज तणु कदी उतार्यु नव ऋण ॥१०॥
पुत्र थइ नव साचव्यो, मात तात निरर।
नारी लइ नोखो थयो, दाधा दुःख अनख ॥११॥
'भ्रात' थइ मैं रोपिया, क्लेश द्वेप ना बीज।
घरु मा छेटां पटावियां शर्मे समज्यो नहीज ॥१२॥
'नाथ' थइ निर्लज्ज पण, मार्यों नारीने मार।
शान्त पण शीरज्यो नहीं धमाधर्म विचार ॥१३॥
'बाप' बन्यो पण बालनी लीधी नव समाल।
धर्म विद्याना दान विण, राख्यो बालनो बाल ॥१४॥
'ससरो' थइ मैं पापिए, वहुनी लूंटा लाज।
धोलामा नाखी धूल्म, भर्यो पापनो भार ॥१५॥
'नोकर' निमकहराम मैं, लीधी लांच हराम।
शेठन ... नाम ॥१६॥

शिष्य चन्यो गुरुराज थी, कीधां गर्व गुमान ।
शीख न ज्ञान श्रवणे सुण्यां, रह्यो छेक अज्ञान ॥२०॥
आसे थकी मैं कोइ दिन, न कर्युं गुरु दर्शन ।
वाच्युं न सूत्रक शास्त्र कइ, प्रिया माहि प्रसन्न ॥२१॥
थान न्ह कथनी सुणी, प्यारा प्यारी नां गीत ।
शास्त्र कथा सुणतां मन, ऊब आवी गचित ॥२२॥
प्रभु रसने चाख्यो नहीं, रसना थी कोई वार ।
प्रभु कीर्तनने स्तवनमां, साचवणु मुखद्वार ॥२३॥
फूल गुलाब अतर तणी, लीधी मैं बहु गंध ।
सन्त चरणनी रज तणी, नव लीधी सुगन्ध ॥२४॥
कायाए फरी धुवांन मैं, परनारी पलंग ।
जप तप व्रत नव आदर्या, सेव्यो नव सत्संग ॥२५॥
'वपारी' थइ मैं बहु छल्या, कूडा नामान लेख ।
तोला मापाने आजनो, लज्यो थानक भप ॥२६॥
थोलूं थई ने चालु कई, करी मात्मा मेळ ।
चोर लफगाने साथ दऊ, आ शु जैन विवेक ॥२७॥
नीच संग घडी स्वार्थने, साध्यो मारी रांक ।
नर्क टिकिट लीधी हाथमां, खोयु नवटांक नाक ॥२८॥
हुकुम छते न वाधी शक्यो, धर्म घधानी पाळ ।
रक गने छरी वानगी, कइक घाल्या कुचाल ॥२९॥
वेठने वेरा वधारिया, नाच्यो नीचने हाथ ।
थोडा पैसान कारणे, भरी नरकनी बाथ ॥३०॥

पग पण वाका चालिया, अवला चलाव्या हाथ।
अवलाइमां अथडाई मुओ, अग अढारे वांक ॥३१॥
बालपणुं खोयु खेलमा, जोबन जोरू माय।
घडपणम ढाबो थयो, पण चाले नहीं काय ॥३२॥
क्यो करती'तो धर्मने, दतो विद्यादान।
कुची हती मुझ पास त, अटकावीं करी सान ॥३३॥
लोभी थई मैं नव कर्यो, श्रावक नो उद्धार।
जैनशाळा आदि निन्दीने, भर्यो पापनो भार ॥३४॥
श्राविका लाभना कामर्मा, क्यों रोप अपार।
दतो दानम वारिआ, छुटूं ते केणीवार ॥३५॥
दखू नजर दुरस पामता, मारा बधु तिर्यंच।
शक्ति छतां मडागांठ थइ, ज्ञान दीधु न रच ॥३६॥
धन मारु तो घरयु रह्यु, नाव्युं साथ लगार।
तोय अटकाव्या पारणां, सघमां कीधो खार ॥३७॥
भूखे मर मारा बधुओ, धधा विण नाचार।
नजर निरखत निहारियां, ढम्यो नव तल भार ॥३८॥
हू जम्य जग सह जम्यू, मार धन स्याने स्यान।
हू ढाकय जग ढांकियु, हू ज्ञानी थी ज्ञान ॥३९॥
पटी पटारा पूण भर्या, धन धान्य चिक्कार।
पाछा रस्या मुझ बन्धुओ, उलटो दइ धिक्कार ॥४०॥
छटकवा छल करिने कहूं, अन्तराइ योग।
अन्तराइ विचारीं शु कर, मन मलु ये रोग ॥४१॥

अपग अनाथ पशु तणी, लीधी न में संभाल।
अपग पशु रखवाळने, उल्टी दीधी गाल ॥४२॥
नरकखाना घर आंगणे, खाल कूडीने कूड।
दुर्गंध क्षर्द वली वध्यां, फेरी जन्तु नां झुण्ड ॥४३॥
'जननी' थनी जणन सूरी, बाकी समझी न कांइ।
सन्तानो धणसी करे, क्रूर लजवी कमाइ ॥४४॥
'वहु' थनी वरवश कियो, नखरे नचाव्यो हमेश।
सासु ससरा सन्तापिआ, भजव्यो दारुण वेष ॥४५॥
'सासु' थनी हु पापिणी, वहुने दीधी गाल।
घरनी बनावी वैतरी, न गणी आपणी बाल ॥४६॥
पाणी छाणीने राधणु, आदि जे घर काज।
वण जोये जीव जमाडिया, वध्यु रोग नु राज्य॥४७॥
'साधु' थई पेट कारणे, पाल्यो नव आचार।
वहेमे वधाने भोलव्या, दरिए बोल्यु नाव ॥४८॥
कीधो न लव उपदेश शुभ श्रम लई शास्त्राभ्यास।
कांपे मीं मार्यु मळे, बनुता सर्वे दास ॥४९॥
गुरु थई 'बैठो होंस करी, कोटे घटी नु पड।
ज्ञान समाधि नेवे मुके, बूड्यो बुडाड्यो सर्व ॥५०॥
जगलनी बुट्टी गणी, दीधो दोकडो खल।
अन्ध श्रद्धामें उतरी गयो, छेतर्या भगवन्त ॥५१॥
(ते मुज मिच्छामि दुक्कड)

⊛ समाप्त ⊛

सुराना प्रिन्टिङ्ग वर्क्स, नं० ४०२, अपर चितपुर रोड
(फूलकटरा) कलकत्ता।